विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता - 1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M38: घनानंद की प्रेम व्यंजना**
इकाई टैग	**HND_P2_M38**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ. विजया सती** एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय इन्क्लेव, दिल्ली ईमेल - vijayasatijuly1@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. आनंद वर्धन शर्मा** प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : anandsharma_64@yahoo.co.in

पाठ का प्रारुप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. घनानंद की प्रेमाभिव्यक्ति की विशिष्टता
4. प्रेम की पीर के कवि
5. प्रेज व्यंजना का सामाजिक आधार
6. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप-

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के विकास-क्रम में रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा की उपस्थिति और विविधता से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्यधारा के उल्लेखनीय हस्ताक्षर घनानंद के काव्य-व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- घनानंद की कविता के मुख्य विषय के रूप में प्रेम की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- घनानन्द की प्रेम व्यंजना की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेंगे और
- हिन्दी कविता के इतिहास में घनानंद के अवदान को समझ पाएंगे।

2. प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के मध्य युग में रीतिकाल की कविता की विशिष्ट पहचान है। रीतिकाल के काव्यस्वर को कथ्य और शिल्प से जुड़ी विशेषताओं के कारण रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध शीर्षकों में रखा गया है। साहित्य के इतिहास को रूप देने वाले विद्वानों ने इन तीनों प्रवृत्तियों का विशद विवेचन किया है और उस युग के कवियों को श्रेणीबद्ध किया है। 'रीति' शब्द काव्य रचना की परिपाटी या पद्धति के अर्थ से जुड़कर मध्यकालीन कवियों की उस काव्यगत प्रवृत्ति को दर्शाता है, जिसमें किसी भी कवि ने परम्परानिबद्ध अथवा परम्पराविमुक्त या फिर स्वच्छंद काव्य सृजन का मार्ग चुना।

हिन्दी की उत्तरमध्यकालीन कविता के प्रांगण में घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में सम्मुख आते हैं। कविता के मूल स्वर के रूप में हम प्रेम को पहचान पाते हैं। रीतिमुक्त कवि के रूप में उनकी प्रेम-व्यंजना की निजी विशेषताएं क्रमश: स्पष्ट होती चली जाती हैं और हम जान पाते हैं कि रीतिमुक्त कविता के इतिहास में ठाकुर, बोधा और आलम जैसे कवियों के बीच घनानंद प्रेम के सर्वथा अनूठे और विलग कवि क्यों हैं।

3. घनानंद की प्रेमाभिव्यक्ति की विशिष्टता

सामान्यत: अन्य रीतिकालीन कवियों ने जब प्रेम को सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त किया, तब भी अपने निजी प्रेम को नहीं बताया, बल्कि प्राय: नायक-नायिका के प्रेम का कथन किया है। लेकिन घनानंद और उनके सहयोगी रीतिमुक्त कवियों ने जब प्रेमाभिव्यक्ति की तो नायक-नायिका के स्थान पर अपने अंतर्मन का साक्ष्य दिया। स्पष्ट ही घनानंद रीतिकाल में रीतिमुक्त तरीके से न केवल प्रेम कर रहे थे बल्कि उसकी अभिव्यक्ति भी कर रहे थे।

घनानंद का प्रेम दो व्यक्तियों के आपसी संबंधों की अभिव्यक्ति है - स्वयं कवि और उनकी प्रियपात्र सुजान का प्रेम-सम्बन्ध। घनानंद ने मुक्त भाव से अपनी इस मानवीय प्रेम भावना को अभिव्यक्ति दी है। घनानंद के कवित्तों के संग्रहकर्ता ब्रजनाथ जी ने उनकी प्रशस्ति में जो लिखा है, उसमें घनानंद के प्रेममय जीवन का सार है -

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरतानि के भेद कों जानै,
जोग-बियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कों ठानै,
चाह के रंग में भीज्यौ हियो बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै,
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै।

प्रशस्तिकार कहते हैं कि उच्चकोटि के जिस प्रेम से घनानंद का अंतर्मन आप्लावित रहता है, वह सौन्दर्य की सूक्ष्मता से उत्पन्न हुआ है। प्रेम के संयोग और वियोग पक्षों को यह कवि भली-भांति समझता-बूझता है। प्रेम में भावनाओं के वैविध्य के स्वरूप को प्रेमी मन ठीक पहचानता है। प्रेम की भावना में गहरे डूबा कवि का मन जिस उद्वेलन को झेलता है, वह प्रेम को और प्रगाढ़ करता है। प्रगाढ़ता भी ऐसी कि बिछुड़े हुए प्रिय से मिलन भी प्रेमी मन को शांत नहीं कर पाता।

स्वच्छंदता के साथ अपने प्रेम भाव की अभिव्यक्ति का वैशिष्ट्य उस युग की समस्त कविता से घनानंद के पार्थक्य को रेखांकित करता है। उन्हें युगीन परम्पराओं की लीक का अनुसरण स्वीकार न हुआ। मध्ययुगीन परिस्थितियों के अनुकूल दरबार में रहकर भी घनानंद ने आश्रयदाता के मनोरंजन भर को काव्य नहीं रचा। एक समय ऐसा भी आया जब परिस्थितियों के घटाटोप में फंसकर घनानंद ने दरबार त्याग दिया। वे सदैव अपने हृदय में आंदोलित भावनाओं से परिचालित हुए। मन का आवेग उनके काव्य की भावभूमि बनता रहा। घनानंद हिन्दी की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि इसलिए हैं क्योंकि वे निर्भीक वाणी में शास्त्र के बंधनों से मुक्ति का, प्रेम की आन्तरिकता का, अपनी उमंग का आख्यान करते हैं और अन्य समकालीनों को राह दिखाते हैं -

प्रेम दुहाई फिरी घनआनंद बांधि लिए कुलनेम गढ़ासी,
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी है करी दासी।

कवि के जीवन में प्रेम की दुहाई फिरने पर कुल की लज्जा समाप्त हो गई। रीझ अर्थात मोहवृत्ति पटरानी बन गई और बेचारी बुद्धि दासी बन कर रह गई। रीझ के हाथों यूं बिक जाने का भाव घनानंद के काव्य में कई बार आया है।

घनानंद की कविता का अन्तरंग जिस एक भाव की गहनता से बना है, वह प्रेम ही है। यूरोपीय विद्वान इमरै बंघा ने इस महत्व को आंकते हुए टिप्पणी की है - 'यह कहना कोई अतिरंजना करना न होगा कि विश्व साहित्य के स्तर पर भी प्रेम के कवि के रूप में उनका महत्व पहचाना जाना चाहिए। उनके कवित्तों की मूल प्रेरणा जीवन की सबसे प्रगाढ़ और मार्मिक अनुभूति - प्रेम है।' (सनेह को मारग: पृष्ठ)
प्रेम की तीव्र संवेदना कवि के मन को आंदोलित कर देती है - वह आत्म को संबोधन करता है -

सूझै नहिं सुरझ उरझि नेह गुरझनि
मुरझी मुरझी निसदिन डावांडोल है।
आगे न बिचार् यौ अब पाछें पछताएं कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है।

प्रेम की गुत्थी में फंस कर उससे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा। विरह के आघात से मुरझा कर नित्य व्याकुल रहना पड़ रहा है। प्रेम करने से पूर्व तो कोई विचार किया नहीं, अब पश्चाताप करने से क्या फ़ायदा? ए मेरे मन ! अब तुम मान लो कि इस व्यापार में तुम्हें कैसा मोल चुकाना पड़ा। अपना सब कुछ देने के बाद मिला क्या? घनानंद के काव्य-संसार की समझ-बूझ भरी यात्रा बताती है कि उन्हें जीवन-पथ पर निश्चित रूप से वह मिला जो जीवन भर की पूंजी बना। यद्यपि उन्होंने कहना न छोड़ा -

अकुलानि के पानि पर् यौ दिन-राति सु ज्यौ छिनकौ न कहूं बहरे
भए कागद नाव उपाव सबै, घनआनंद नेह-नदी गहरे।

किन्तु प्रेम की गहरी नदी की थाह घनानंद ने भरपूर ली।

4. प्रेम की पीर के कवि

घनानंद के प्रेम का मूल उनके जीवन में सुजान की उपस्थिति है। सुजान एक दरबारी नर्तकी थी। घनानंद दरबारी कवि। घनानंद के जीवन और काव्य में प्रेम का आधार सुजान ही है। सुजान के अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध घनानंद ने पूरे मन से डूब कर सुजान से प्रेम किया। घनानंद के प्रेम के सन्दर्भ में सुजान का उल्लेख एक प्रासंगिक प्रकरण है। सुजान के प्रति कवि का विशुद्ध भौतिक प्रेम कालान्तर में जिस नई डगर पर चल पड़ा, उसे पहचान कर हम कह सकते हैं कि घनानंद की कविता में निबद्ध प्रेम अलौकिक भी है।

इमरै बंघा कहते हैं - "प्रेम मनुष्य को अहं से मुक्त करता है। 'सनेह के मारग' का पथिक अहं छोड़कर अपनी यात्रा कर सकता है...अहं की कारा तोड़ने के लिए मुख्यतया दो तरह के प्रयत्न मानव इतिहास में नज़र आते हैं : प्रेम और भक्ति। प्रेम में व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए अपने अस्तित्व को विलीन कर अपना सुख-दुःख दूसरे व्यक्ति के सुख-दुःख से अलग नहीं मानता। यह लौकिक प्रेम की पराकाष्ठा है। भक्ति इसके विपरीत - अलौकिक प्रेम है। इसमें मनुष्य अपने सभी लौकिक बंधनों से ऊपर उठकर अपने आराध्य के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। साहित्य और दर्शन में आम तौर पर प्रेम और भक्ति की चर्चा अलग-अलग की जाती है लेकिन कभी-कभी ऐसा प्रयत्न भी दिखाई देता है जब दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया गया हो......लौकिक और अलौकिक प्रेम की एकता को उन्होंने (घनानंद ने) भारतीय साहित्य में पहली बार उपस्थित किया.... लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम से अलग न मानना हिन्दी साहित्य में आनंदघन (घनानंद) का विशिष्ट योगदान है।'

इसे लक्षित कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद को रहस्योन्मुख कवि कहा है। घनानंद ने जैसे जानबूझ कर अपने लौकिक अनुभव को रहस्यमय बनाया ताकि यह रूप प्रभावित करे। स्वयं घनानंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला का क्षुद्र अंश कहा है -

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, बिचार बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस है बिबस अवगाहैं दौऊ, नेही हरी-राधा जिन्हें देखे सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन, पूरि लोक लोकनि उमगी उफनायौ है।
सोई घनानंद सुजान लागि हेत होत, ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।

'संसार में फैला प्रेम-व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जलकेलि किया करते हैं। वही कण घनानंद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियों की भांति घनानंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रहम-प्रेम का आभास भी दिया है।' (विश्वनाथप्रसाद मिश्र: घनानंद: पृष्ठ 15)

प्रेम एवं सौन्दर्य

घनानंद का प्रेम सौन्दर्य आधृत है, उन्होंने रूपजन्य प्रेमभाव को सहज स्वीकृति दी है। किन्तु जिस प्रकार प्रेम में उसी प्रकार सौन्दर्य में भी घनानंद के लिए भाव का महत्व है। प्रिय सुन्दर है, पर घनानंद ने उसका नख-शिख वर्णन नहीं किया। -

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी, अघानी कहूं नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ, सुजान ! संकोच औ सोच सहारियै।

रोकी रहै न, दहे घनानंद, बावरी रीझ के हाथनी हारियै।

जिस नव्यता को कालिदास ने रमणीयता का आधार कहा, वह यहाँ प्रथम पंक्ति में बहुत स्पष्ट है। प्रिय के सौन्दर्य का ठाठ ही कुछ निराला है - जैसे-जैसे निहारते हैं वैसे-वैसे उसका नयापन व्यक्त होता जाता है। प्रेमी की आँखें इस अनूठे सौन्दर्य को देख अघाती नहीं। एक ही तो मन था वह प्रिय पर न्यौछावर कर दिया। मन को बौरा देने वाली मुग्धता के हाथों हार स्वीकार कर लेने के सिवा प्रेमी हृदय के पास अन्य राह कौन-सी है? ऐसी स्थिति में प्रेमी मन में अब कोई संकोच, कोई सोच शेष नहीं रहा।

सौन्दर्य का चित्रण घनानंद के यहाँ ऐन्द्रिय भी है, पर उसमें छिछलापन नहीं, गहनता है। कवि को शुद्ध शारीरिक प्रेम की आकांक्षा भी नहीं। बल्कि उनके भीतर भावनात्मक प्रेम की ही उमंग है।

इस पृष्ठभूमि में **घनानंद की प्रेम व्यंजना की विशिष्टता** को कुछ बिन्दुओं के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है-

(i) अनुभव सापेक्षता

घनानंद का प्रेम अनुभव सापेक्ष है। वे जो अनुभव कर लेते हैं वही लिखते हैं। प्रेम उनके जीवन में घटित होता हुआ सत्य है। इस प्रेम भावना से ही उनका जीवनक्रम संचालित होता है -

जब तें निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे
तब तें गही है उर आन देखिये की आन
....
प्राणप्यारी ज्यारी घनानंद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करत गान
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रंगे
मन-सिंघासन पै विराजे तिन ही को ध्यान।

जब से इन आँखों ने प्रिय सुजान को देखा है तब से प्राणों ने किसी अन्य को न देखने का जैसे प्रण ले लिया है। प्रिय प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनकी गुण कथा जीवन संचार करने वाली है। जिह्वा रातदिन उसी का गुणगान करती है। अंग-प्रत्यंग उन्हीं के रंग में रंग गया है। मन के सिंहासन पर प्रिय ही विराजते हैं।

यह कहना निराधार नहीं है कि घनानंद का प्रेम **निजी किन्तु स्पष्टत: व्यक्त** है। घनानंद ने प्रेम में **गोपनीयता को प्रश्रय नहीं** दिया। **निर्द्वन्द्व भाव से आत्माभिव्यक्ति** की है। घनानंद इस वैयक्तिक प्रेम का गोपन नहीं करते है। इसमें कोई आवरण नहीं है। यह प्रेम केवल ऐन्द्रिय नहीं है। गहन और आतंरिक है। सूक्ष्म है। व्यक्तिनिष्ठ है। निजी है।

(ii) अटूट विश्वास

घनानंद की प्रेम कविता में साक्ष्य हैं कि कवि प्रेम की मानवीय सदाशयता में घना विश्वास रखता है। घनानंद का प्रेमीमन जीवन की किसी भी अवस्था में निराश नहीं है, क्योंकि उसके मन में मिलन का **विश्वास** है -

चाहै प्रान चातक सुजान घनआनंद कों
दैया कहूं काहू कौ परै न काम कूर सों

सुजान आनंद की घन हैं, प्रेमी चातक है। इनकी परस्पर सम्बद्धता से इनकार कैसे किया जा सकता है? यह सौहार्दपूर्ण सम्मिलन ही घटित होना चाहिए - हे देव ! कभी किसी कोमल भाव का कठोर भाव से सामना न हो !

(iii) सहजता - घनानंद का प्रेम सहज-स्वाभाविक है,

अति सूधो सनेह को मारग है जहां नैकु सयानप बांक नहीं
तहां सांचे चलें तजि आपुनपो झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला मन लेहु छै देहु छटाँक नहीं।।

जैसी पंक्तियाँ प्रेम की इसी सहजता की स्वीकृति हैं। प्रेम का पथ अत्यंत सरल है - वहां चतुराई और वक्रता के लिए कोई स्थान नहीं। सच्चा प्रेमी अपने आप को भुला कर इस पथ पर अग्रसर होता है, लेकिन जिनके मन में छल-कपट है वे इस राह पर चलने से झिझकते हैं। यह प्रेम केवल एकनिष्ठ है - किसी दूसरे के विषय में सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह प्रेम दर्शन की गूढ़ता में उलझाता-उलझता नहीं। किन्तु इससे प्रेम की निगूढ़ता में कोई अंतर नहीं आता। यह प्रेम गहन भावनात्मक है। इसमें कवि के जीवन का समस्त हर्ष और उल्लास निहित है।

(iv) **सार्थकता**

घनानंद अपने जीवन की सार्थकता का आधार प्रेम को मानते हैं। प्राप्ति के बजाए दे देना इस प्रेम की सार्थकता है। घनानंद के लिए प्रेम में देना प्रमुख है - यद्यपि लेने की आकांक्षा भी सर्वथा नि:शेष नहीं हुई है। कवि का प्रेमी मन प्रतिदान की आकांक्षा भी करता है। उपालंभ और उलाहना देते हुए वह अपने मन का भाव व्यक्त करता है-

घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

कवि प्रिय को विश्वास जरूर दिलाता है कि हमारे लिए केवल एक तुम हो, कोई दूसरा कभी भी नहीं। किन्तु फिर यह पूछने से खुद को रोक नहीं पाता कि प्रिय तुमने यह कौन-सा पाठ पढ़ लिया कि मन लेकर छटांक भर भी नहीं देते- हमारा मन मोह लिया और अब अपनी छटा-सौन्दर्य की एक झलक भी नहीं दिखाते?

(v) गंभीरता

घनानंद प्रेम की **स्वाभाविक गंभीरता** का निर्वाह करते हैं - प्रेम को उदात्त गरिमा प्रदान करते हैं। यह प्रेम बाह्य और स्थूल नहीं, मन की तल्लीनता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। तत्कालीन समाज के रंग-ढंग, हास्य, चमत्कृति, क्रीड़ा, विनोद के बीच वे निरंतर अपने **नितांत गूढ़ प्रेम की पूंजी** को बचाए रखना चाहते हैं। प्रश्न भी करते हैं तो गरिमापूर्ण तरीके से -

जीवन हौ जिय की गति जानत जान ! कहा कहि बात जतैयै।

जो कुछ है सुख सम्पति सौंज सु नैसिक ही हंसि दैन में पैयै।
आनंद के घन ! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तें क्यों अरसैयै।
प्रीतिपगी अंखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै।

प्रिय तुम मेरे जीवनाधार हो, मेरे मन की दशा भलीभांति जानते हो, तुमसे कुछ भी क्या कहना? तुम्हारे हंसभर देने में मेरे जीवन का सब सुख-वैभव समाहित है। तुम तो साक्षात घनीभूत आनंद के बादल हो, फिर मुझ पपीहे की आकुल पुकार को अनसुना करो - यह कहाँ का न्याय है? कहाँ तुम्हारी वह प्रेमभरी दृष्टि और कहाँ यह दृष्टि फेर लेना- इस अन्याय को कैसे सहन किया जा सकता है?

(vi) निर्भीकता

इस प्रेम में यद्यपि लोकलाज और सामाजिक भय का तिरस्कार है फिर भी यह प्रेम किसी तरह का खिलवाड़ नहीं है। उसमें निर्भीक **साहस** के साथ-साथ **निष्ठा, तादात्म्य और समर्पण का भाव** है। ये साहसपूर्वक अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं। घनानंद ने प्रेम के उस रूप को अपनाया है जहां यदि संसार के त्याग का प्रश्न भी उठे तो सहर्ष त्याग दें -

जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनी है।

विधाता ने प्रेमी का जीवन भी कैसे विनिर्मित किया है, जहां प्राण बिना जीना और मृत्यु आए बिना मरना होता है ! जीवनाधार प्रिय के अभाव में जीना पड़ता है और अभाव के दु:ख में मरण झेलना होता है। प्रेम की रीति भी कितनी विचित्र है जहां प्रिय का प्रेम जीवन देता है तो उस प्रेम के अभाव में जीवन हर भी लेता है। मरणासन्न प्रिय को प्रेम की आशा फिर-फिर जीवन से जुड़े रहने को विवश करती है -

मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत।

(vii) हार्दिकता

यह प्रेम हार्दिक है - बौद्धिक नहीं। इस प्रेम की शक्ति यही है कि यह पूरे मन से किया और जिया गया है। हृदय की उदारता इस प्रेम का मूलाधार है -

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनानंद जीवन-प्राण सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीकै रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू।

प्रेमी मन के हिस्से में तो प्रिय की स्मृति आई और प्रिय को केवल भूलना आता है, उदार मन उलाहना भी कैसे दें? प्रेमी को सब स्वीकार्य है। प्रिय के जो मन आए वह करे ! सच यही है कि इस जीवन में स्पंदन का आधार केवल प्रिय की चर्चा ही है। ठीक है कि ऐसे प्रिय के मन में प्रेमी के लिए कोई उत्कंठा शेष नहीं रही, किन्तु वह तो यही चाहता है कि प्रिय सदा कुशल रहे, प्रेम में यही उसकी शुभाशंसा है।

(viii) आवेगमयता

घनानंद के प्रेम का आवेग कभी शांत नहीं होता। प्रिय से मिलन होता है तो आंसू पहले दौड़ते हैं - ऐसे में प्रिय को देखा कहाँ जाता है? कवि प्रिय से मिलने और वियुक्त होने में एक जैसी तृषा का अनुभव करता है। सौन्दर्य को देख और अधिक देखने की चाह, बातें सुनकर और अधिक बात करने की चाह, निकट रह कर और अधिक निकट रहने की चाह मन को बेचैन किए रहती है - यह भी घनानंद के प्रेम की विशेषता है।

यह कैसो संजोग न बूझि परै
बिछरै मिले प्रीतम सांति न मानै।

विधाता ने प्रेम की अवस्था को न जाने किस तरह रचा है कि यहाँ प्राण (प्रिय) के अभाव में जीना पड़ता है और मृत्यु आने से पहले मरण हो जाता है ! -

जीवन मरन जीव मीच बिना बन्यौ आय
हाय कौन बिधि रची नेह की रहनि है

(ix) वास्तविकता

घनानंद के प्रेम की वास्तविकता का सम्बन्ध प्रेमी मन की उतार-चढ़ाव भरी स्थितियों से और उसकी टूटन से भी है, हर हाल में कवि को वस्तुस्थिति स्वीकार है। पहले प्रेम से अपनाना और फिर नाता तोड़ना - यह कहाँ का चलन है? किन्तु यदि यही प्रेममय जीवन का सच है, तो वह भी सहर्ष स्वीकार है। कवि का मन तो प्रेममय है - कामनामय है, इस विश्वास से भरा है कि शायद कभी प्रिय के मन में भी मेरे लिए थोड़ी करुणा, थोड़ा स्नेह पैदा हो जाए ! वह भी मेरे प्रेम की कीमत समझे। इसलिए वह आग्रह करने से नहीं रुकता कि प्रिय जिस निराश्रित प्रेमी को तुमने जीवन की बीच धारा में स्नेह से सम्भाला था, अब बांह पकड़ कर उसे ही क्यों डुबोते हो? अपने चातक को अपने स्नेह की डोर से बाँध क्यों नहीं लेते? पहले प्रेमपूर्ण व्यवहार से आशान्वित किया तो अब विश्वास में यों विष तो न घोलो -

पहलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तह कई तोरियैजू।
निरधार आधार दै धार-मंझार दई गहि बांह न बोरियै जू।
घनानंद आपने चातिक कौं गुन बांधिलें मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यों बिष घोरियै जू।

इस आग्रह के बावजूद घनानंद का प्रेम भाव उनके जीवन का ऐसा अटल सत्य है कि किसी भी हालत में विलुप्त हो जाने वाला नहीं। प्रिय न भी चाहे तो क्या? प्रिय न भी मिले तो क्या?

(x) संघर्षमयता

घनानंद के प्रेम की जीवन्तता का आधार उसमें निहित संघर्षमयता है। जीवन में जहां विराम, वहां जड़ता है - यह मानने वाला कवि अपने प्रयत्नों में कोई कमी नहीं आने देता - प्रिय को खोजना, मिलन की आकांक्षा करना - यह उसके जीवन का दैनंदिन क्रम है -

कैसें सुधि आवै बिसरें हूँ हो हमारी उन्हें,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तही।
कहा करैं जी तें निकसती न निगोड़ी आस,
कौने समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही।
सुन्दर सुजान बिन दिन इन तम सम,

बीतै तमी तारनि कों तारनि गनत ही।

प्रेम भरा मन सदैव इसी सोच में डूबा रहता है जिस प्रिय ने हमें भुला दिया उसे मेरी स्मृति कैसे आए? मन से यह आशा कभी नहीं जाती कि बनते-बनते बात कभी बन भी जाती है। प्रिय के अभाव में ये दु:ख भरे दिन बीत ही तो जाएंगे चाहे तारे गिनते-गिनते ही क्यों न हो !

(xi) दृढ़ता

घनानंद के प्रेम में गजब की दृढ़ता है। प्रेमी मन कितना ही आकुल-व्याकुल हो ले पर स्थिरता को नहीं छोड़ता। प्रेमी मन यह तो नहीं जानता कि सुजान उसे प्यार करती है या नहीं, पर उसे सुजान से प्रेम करना प्रिय है और वह संतुष्ट है कि मैं तो प्रेम करता हूँ, उसके लिए प्रेम करना ही पर्याप्त है। क्योंकि अंतत: बड़े चाव से पांवों में प्रेम की बेड़ी तो खुद ही पहनी है !

पायनि पारि लई घनआनंद चायनि बावरी प्रीति की बेरी।

(xii) एकनिष्ठता

घनानंद का प्रेम एकनिष्ठ है, अतार्किक है - यह एक तरह से प्रथम दृष्टि का प्रेम है। सुजान की बेरुखी है, वातावरण प्रेम के विरुद्ध है, फिर भी प्रेमी मन अनुरक्त बना रहता है -

लाखनि भांति भरे अभिलाषनि कै पल पांवड़े पंथ निहारैं।
लाड़ली आवनी लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यों रस भीजै रहें घनानंद रीझे सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अंसुवान सों रावरे पाय पखारैं।

कितनी-कितनी अभिलाषाएं मन में संजोए, समर्पित भाव से प्रेमी प्रिय की राह देखता है। प्रिय के आगमन की लालसा का प्रण लिए रहता है। प्रिय का वह सुंदर रूप कभी विस्मृत नहीं होता - प्रेम की तन्मयता में मन डूबा रहता है। यह चाह मन में बनी रहती है कि कब प्रिय आएं कब अपने आंसुओं से उनके पैर पखारूँ?

(xiii) अभिलाषा

प्रेम की संयोगावस्था में प्रिय से अनवरत मिलन से बढ़कर कोई अभिलाषा नहीं होती। प्रेमी मन अभिलाषाओं का पुंज होता है। प्रिय से मिलन की अवस्था में घनानंद का मन ऐसी सहज कोमल अभिलाषाओं से भरा है - जिन्हें शब्दों में बांधा भी नहीं जा सकता - जैसे प्रिय के मुख सौन्दर्य को बस देखते रहने भर की नयनों की यह आकांक्षा -

लालसा ललित मुख सुषमा निहारिबे की
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।

यह प्रेमी मन की सर्वथा नि:स्वार्थ निर्दोष अभिलाषा है।

(xiv) उपालंभ

प्रेमी मन का सबल हथियार उपालंभ रहा है। घनानंद की कविता में विरही मन के उद्गार प्राय: उलाहना बन कर प्रकट हुए हैं। जो प्रिय संगी-साथियों संग मगन रहना जानता है, वह प्रेम में अकेले होने के दु:ख को कैसे पहचानेगा?

जो केवल अन्यों को लुभाना जानता है - वह स्वयं मुग्ध होने के भाव को क्या जानेगा? प्रिय चतुर है और प्रेमी विह्वल, आनंद का बादल चातक की प्यास को कैसे जान सकता है?

कांह परै बहुतायत में अकलौनी की वेदनि जानौ कहा तुम
आरतिवंत पपीहन कौ घन आनंद के घन जानौ कहा तुम।

वियोग दुःख में तपते घनानंद के प्रेमी मन ने प्रिय की निर्ममता को, उसके द्वारा की जा रही उपेक्षा को, उसके स्वभाव की स्वार्थपरता को, अनीति को इन शब्दों में बांधा है -

लै ही रहे हो सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे
देख्यौ न है सपनेहु कहूँ दुःख त्यागो सकोच औ सोच सुखारे
कैसो संजोग बियोग धों आहि फिरौ घनआनंद है मतवारे।

प्रिय तुमने सदा दूसरों के मन को लिया ही है - तुम देना जानते ही नहीं। तुमने कभी सपने में भी दुःख का अनुभव नहीं किया, सदैव सुख में रहे हो - तुम्हें कोई संकोच और चिंता तो है ही नहीं। तुम क्या जानो कि संयोग और वियोग क्या होता है - तुम सदा मस्त घूमना ही जानते हो !
इस प्रेम में प्रिय के हाथों उपेक्षा की चरम सीमा पर, क्रोधावेश में बुरा भला कहने की नौबत भी आ जाती है -

झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनंद कहा गनौ।

वह जो मेरा प्रिय है, झूठ के सच्चेपन से तृप्त है, प्रेम के कच्चेपन में पका हुआ है। उसके गुणों का बखान आखिर कहाँ तक करूं?

उपरोक्त विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि घनानंद मूलत: **प्रेम की पीड़ा** के कवि हैं। उनके काव्य में प्रेम का विरह पक्ष ही प्रबल है। विरह का स्वरूप अनुभूतिजन्य होने से मर्मस्पर्शी है। इसका मूल अपनी प्रिया से बिछुड़ने का दुःख है। उनका प्रेम प्राय: अनुभयनिष्ठ प्रेम भी है। पीड़ा इस लिए बढ़ जाती है कि यह नेह एकतरफा है - कवि को प्रेम का प्रतिदान नहीं मिलता। किन्तु फिर भी यह एकान्तिक प्रेम ऐसा है कि प्रेमी निष्ठावान और पूर्ण रूप से समर्पित बना रहता है:

चाहो अनाचाहो जान प्यारे पै आनंदघन प्रीति रीति विषम सु रोम रोम पगी है

घनानंद के विरह चित्रों में **तब और अब का बोध** - संयोग और वियोग के अच्छे-बुरे समय की तुलना भी मर्मस्पर्शी प्रभाव उत्पन्न करती है -

पहिले घनआनंद सींचि सुजान कही बतियां अति प्यार पगी,
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास दगानि दगी।

पहले यानी संयोग की अवस्था में तो प्रिय ने खूब आनंद वर्षा की, प्यार भरी बातें कहीं। और अब वियोग की अग्नि जलाकर, मुश्किलों को बढ़ाकर, विश्वासघात का घाव दिया है।

पहले जिस प्रिय की सुन्दर छवि को देख कर जीवित रहते थे, अब उस समय को याद करते ही आँखें जल उठती हैं। जीवन में आनंद की वर्षा कर देने वाले प्रिय सुजान के अभाव में सभी प्रकार का सुख-चैन हमारे जीवन से विदा हो गया है -

तब तो छवि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे
घनआनंद प्यारे सुजान बिना सबहि सुखसाज समाज टरे।

विरह में प्रिय के प्रति व्यग्र भाव उस सन्देश में भी निहित दिखाई देता है, जो हमें मेघदूत की याद दिलाता है:

परकाजहि देह को धारि फिरौ पर्जन्य जथारथ ह्वै दरसौ
कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अन्सुवानि हू लै बरसो।

वियोगी हृदय में प्रिय को कैसे भी पा लेने की **चाह** बलवती होती जाती है - कोई तो संदेशवाहक बने, प्रिय तक यह सन्देश पहुंचाए-

ए रै बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन वारि तो सों और कौन मनै ढरकौं ही बानि दै।
जान उजियारे गुण भरे अति मोहि प्यारे अब ह्वे अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरहबिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि, धूरि तिन्ह पांयन की हा हा ! नैकु आनी दै।

मेरे बन्धु सखा पवन ! तुम तो सभी दिशाओं में जाते हो, मैं तुम पर स्वयं को न्यौछावर करता हूँ बस ज़रा सा मुझ पर द्रवित हो जाओ ! मेरे प्रिय सुजान इतने पावन और गुणों से भरे हैं, वे मुझे अत्यंत प्रिय हैं, लेकिन अब वे न जाने क्यों हमारे प्रति निर्मम हो गए हैं और हमारी पहचान ही भुला बैठे हैं। मैं विरह की व्यथा को आँखों में बसाकर रख लूंगी ...दया करके उनके पाँव की रत्ती भर धूल ही मेरे लिए ला दो !

प्रेम के दुःख में भी घनानंद ने परम्परागत वर्णन नहीं किए। उनके सम्मुख प्रेमी मन की आकुलता, आतुरता और व्यथा को मूर्त करना ही प्रमुख रहा।

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
कैसे रहैं प्राण जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तो उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।
चातक है रावरो अनोखे मोह आवरो,
सुजान रूप बावरो बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये मैं बसाय आय,
हाय कब आनंद को घन बरसायहौ।

प्रिय तुम तो सदा ही मेरे हित के आधार हो। यदि तुम ही अनमने होकर मुझसे रूठोगे तो यह प्राण कैसे बने रहेंगे? तुम तो इतने उदार हो और मैं दीन-हीन तुम्हारे द्वार आ पड़ा हूँ। मेरी पुकार तो सुनो - मुझे ऐसे कब तक तरसाओगे? मैं तो आपका पपीहा हूँ, मुझे आपसे अनूठा मोह है। मैं तो आपके सौन्दर्य पर लुट गया हूँ - अपना मुखमंडल तो मुझे दिखाओ ! कृपया दयावान बन कर मेरे विरह दुःख को दूर करो, ऐसा कब होगा कि आप आनंद के बादल बन कर मेरे जीवन में बरस जाओगे?

5. प्रेम व्यंजना का सामाजिक आधार

घनानंद के विरह का मूल सुजान से बिछुड़ने का दुःख है। इसलिए घनानंद को समझने के लिए घनानंद के समय और समाज से मुखातिब होना पड़ता है। उनके प्रेम का पथ विषमताओं से भरा है, लेकिन कोई बाधा घनानंद की प्रेम

भावना को परिवर्तित नहीं कर पाती। जीवन में प्रेम की निजता के कारण घनानंद प्रेम की गरिमा के आस्वाद को पहचान सके। घनानंद के सम्मुख अपना जीवन और समाज निरंतर रहा। उनके बीच रह कर जो अनुभूतियाँ हुई उन्हीं का रेखांकन वे अनवरत करते रहे। दिवाली की रात जहां सब उमंग में भर मनचाहा आनंद करते हैं, दीपक जलाते हैं वहां विरही मन प्रेम साधना में हृदय को जगाकर योग सिद्ध करते हैं

दियरा जगाय जागैं पिय तीय रागें,
हियरा जगाय हम जोगहीं जगावहीं।

घनानंद का समय ऐसा था जो प्रिय से मिलन को जटिल बनाता था। समाज की उपस्थिति बहुत बड़ा स्थान घेरती थी। आश्चर्य नहीं कि ऐसे समाज में घनानंद को प्रिय से अनवरत वियोग का दुःख झेलते हुए जीना पड़ा। इसलिए घनानंद 'प्रेम की पीर के कवि' कहे जाते हैं। घनानंद ने अनुभव किया कि **सामाजिक विषमता** के बीच प्रेम की कोमल भावना का सजीव बने रहना अत्यंत दुष्कर है, किन्तु फिर भी वे उसे बचाए रखने के भरसक प्रयास करते हैं। परिस्थितजन्य वैषम्य प्रेमी मन को विवश करता है, पर वह हार नहीं मानता। केवल प्रिय से अपना दुःख साझा करना चाहता है -

घनआनंद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भांतिन हौं दुःख-सूल सहौं
नहिं आवनि औधि, न रावरी आस, इते पै एक सी बात चहौं
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ उतर कौन कहौं
जिय नेकु विचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि तें पाय गहौं।

प्रिय सुजान! यह भर सुनो कि मैं किस तरह तुम्हारे अभाव के दुःख का शूल - कष्ट सहता हूँ। न तो तुम्हारे आने की अवधि तय है न ही तुमसे कोई आशा ही है। इतने पर भी एक बात कहना चाहता हूँ। अकारण मेरी यह दशा देख कर यदि कोई पूछ ही बैठे तो क्या उत्तर दूं? ज़रा अपने मन में इस पर विचार करके मुझे बता तो दो - दुखित मन मैं दूर ही से तुम्हारे प्रति अपना सम्मान प्रकट करता हूँ !

सामाजिक स्तर पर कवि की पीड़ा अपनी इस असहायता से भी उपजी है -

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेचि करी अधबीच ही लौंडी
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीके भई इन काज कनौंडी
क्यों करि थाह लहौं घनआनंद चाह नदी तट ही अति औंडी
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजती नेह की डौंडी।

आँखों ने प्रिय का सौन्दर्य क्या देखा कि उस रूप पर बिक कर मुझे उनका दास ही बना दिया। घर बाहर सब ओर बात फ़ैल गई। इनके कारण मैं बहुत अच्छी तरह से बदनाम हो गया। प्रेम की नदी तो तट पर ही बहुत गहरी है, उसकी थाह कैसे ली जा सकती है? विश्वासघाती प्रिय तो कुछ सुनता नहीं और उधर पूरे संसार में मेरे प्रेम की बात फ़ैल गई।

6. निष्कर्ष

घनानंद मध्ययुग में 'प्रेम के उमंग भरे कवि' (विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनानंद ग्रंथावली : पृष्ठ 10) कहे जाते हैं। स्वयं घनानंद अपने आप को प्रेम के उस पथ का पथिक कहते हैं, जहां अपने आप को भुलाकर चलना होता है :

जान घनानंद अनोखो यह प्रेमपंथ
भूले ते चलत, रहें सुधि के चकित ह्वै !

घनानंद के लिए इस पथ पर सरलता ही संबल है। यहाँ चातुर्य काम नहीं आता। संसारी प्रेम का चरमोत्कर्ष यही है कि अब प्रिय और प्रेमी दो नहीं एक हो चुके हैं। प्रिय का दुःख और हर्ष प्रेमी का भी उतना ही है। घनानंद की समग्र कविता की मूल प्रेरणा प्रेम है। उनके रचनात्मक और निजी जीवन का आंतरिक भाव प्रेम है। कवि ने छंद दर छंद सुजान की प्रेममय स्मृति को सहेजा है। घनानंद की कविता में आद्यंत गुंथी प्रेम भावना में प्रेमी मन के कितने ही वैशिष्ट्य झलकते हैं। इस प्रेम पंथ पर आगे बढ़कर कवि ने निजी प्रेम भाव को कृष्ण-राधा के प्रेममय जीवन की तन्मयता के समकक्ष पहुंचा दिया है। घनानंद ने प्रेम पथ को ज्ञान से आगे उच्च पद दिया है-

ज्ञान हूँ तें आगे जाकी पदवी परम ऊंची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनानंद अनोखो यह प्रेम पंथ
भूले ते चलत, रहें सुधि के थकित हवै।

आचार्य शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं - 'प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक ....दूसरा कवि नहीं हुआ।' **विषम,** अनुभयनिष्ठ अथवा एकान्तिक प्रेम घनानंद के विप्रलंभ की व्यथा को बढ़ाने वाले कारक तत्व हैं। कहीं-कहीं यह विषमता सूफी काव्य की प्रेम की पीर और फारसी काव्य के प्रेम के वैषम्य के निकट पहुँचती है -

आसा गुण बाँधी कै भरोसो सिल धरि छाती,
पूरो पन सिन्धु मैं बूड़त न सके हौं
दुःख दव हिय जारि अंतर उदेग आंच,
निरंतर रोम रोम त्रासनि ताचाय हौं।
लाख लाख भांति की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसे घनआनंद गही है टेक मन माहि,
ऐरे निर्दई तोहि दया उपजे हौं।

आशा की डोर से बंधा हुआ मैं भरोसे का पत्थर हृदय पर रखकर, अपने प्रण के पूरे सागर में डूब जाने से नहीं झिझकूंगा। दुःख की अग्नि हृदय में जलाकर, अंतर्मन के उद्वेग की लपटों में अपने रोम-रोम को निरंतर कष्ट से तपा दूंगा। कई दुष्कर दशाओं को जानता हुआ भी सर पर आरी चलवा लेने से नहीं हिचकूंगा। मैंने तो अपने मन में यह ठान लिया है कि मेरे निर्दयी प्रिय ! संभव है कि इस तरह तुम्हारे मन में दया उपजा सकूं !

कवि की एकमात्र प्रतीक्षा यह है कि विरह के महातम को काटने वाला प्रिय का मुख चन्द्र कब उदित होगा ? इस आस में उसने स्वयं को प्रिय के नाम स्मरण में केन्द्रित कर दिया -

जीव तें भई उदास तऊ है मिलन-आस
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे !

घनानंद की कविता में विप्रलंभ के एक विशिष्ट पहलू को रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने इस प्रकार रेखांकित किया है - "वियोग की चरम मन:स्थिति में प्रेमी का कहना है 'मो गति बूझि परै तब ही जब होहू घरीक लौं आपु तें न्यारे"। यहाँ स्वयं अपने से विलग होने की कल्पना जितनी सूक्ष्म है उतनी ही मार्मिक। योग की भाव-भूमि को कवि ने मानों कविता के स्तर पर सम्भव कर दिया है।"